1067CH02

भारत में राष्ट्रवाद

जैसा कि आप देख चुके हैं, यूरोप में आधुनिक राष्ट्रवाद के साथ ही राष्ट्र-राज्यों का भी उदय हुआ। इससे अपने बारे में लोगों की समझ बदलने लगी। वे कौन हैं, उनकी पहचान किस बात से परिभाषित होती है, यह भावना बदल गई। उनमें राष्ट्र के प्रति लगाव का भाव पैदा होने लगा। नए प्रतीकों और चिह्नों ने, नए गीतों और विचारों ने नए संपर्क स्थापित किए और समुदायों की सीमाओं को दोबारा परिभाषित कर दिया। ज़्यादातर देशों में इस नयी राष्ट्रीय पहचान का निर्माण एक लंबी प्रक्रिया में हुआ। आइए देखें कि हमारे देश में यह चेतना किस तरह पैदा हुई?

दूसरे उपनिवेशों की तरह भारत में भी आधुनिक राष्ट्रवाद के उदय की परिघटना उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन के साथ गहरे तौर पर जुड़ी हुई थी। औपनिवेशिक शासकों के ख़िलाफ़ संघर्ष के दौरान लोग आपसी एकता को पहचानने लगे थे। उत्पीड़न और दमन के साझा भाव ने विभिन्न समूहों को एक-दूसरे से बाँध दिया था। लेकिन हर वर्ग और समूह पर उपनिवेशवाद का असर एक जैसा नहीं था। उनके अनुभव भी अलग थे और स्वतंत्रता के मायने भी भिन्न थे। महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने इन समूहों को इकट्ठा करके एक विशाल आंदोलन खड़ा किया। परंतु इस एकता में टकराव के बिंदु भी निहित थे।

पहले की एक और पुस्तक में भी आपने भारत में राष्ट्रवाद के उदय का अध्ययन किया था। वहाँ आपने बीसवीं सदी के पहले दशक तक की कहानी पढ़ी थी। इस अध्याय में हम 1920 के दशक से आगे अध्ययन करेंगे और असहयोग आंदोलन तथा सविनय अवज्ञा आंदोलन के बारे में पढ़ेंगे। हम ये देखेंगे कि कांग्रेस ने राष्ट्रीय आंदोलन को विकसित करने के लिए किस तरह के प्रयास किए, इस आंदोलन में विभिन्न सामाजिक समूहों ने किस तरह हिस्सा लिया और किस तरह राष्ट्रवाद ने लोगों की कल्पना को नयी उड़ान दे दी।
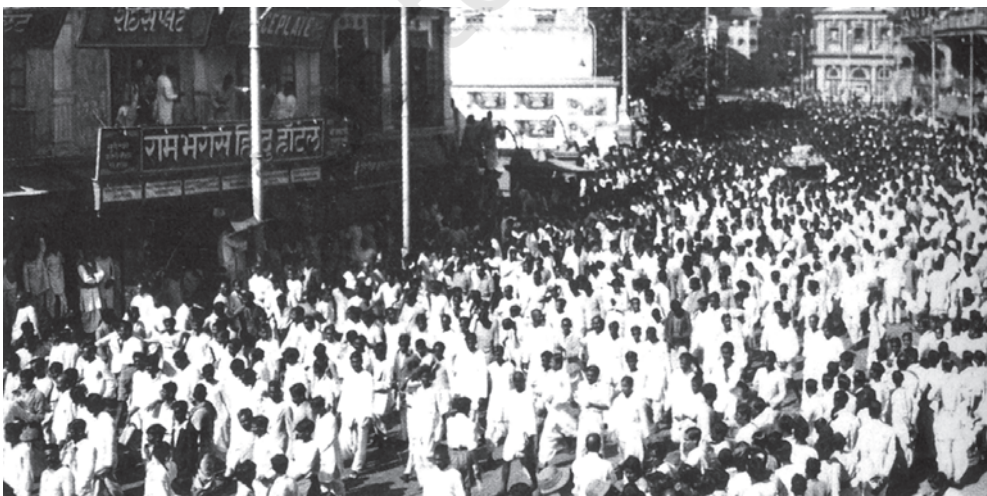
चित्र 1 – 6 अप्रैल 1919
राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान सड़कों पर इस तरह के बड़े जुलूस आम बात थी।

1 पहला विश्वयुद्ध, ख़िलाफ़त और असहयोग

1919 से बाद के सालों में हम देखते हैं कि राष्ट्रीय आंदोलन नए इलाक़ों तक फैल गया था, उसमें नए सामाजिक समूह शामिल हो गए थे और संघर्ष की नयी पद्धतियाँ सामने आ रही थीं। इन बदलावों को हम कैसे समझेंगे? उनके क्या परिणाम हुए?

सबसे पहली बात यह है कि विश्वयुद्ध ने एक नयी आर्थिक और राजनीतिक स्थिति पैदा कर दी थी। इसके कारण रक्षा व्यय में भारी इज़ाफ़ा हुआ। इस खर्चे की भरपाई करने के लिए युद्ध के नाम पर क़र्ज़े लिए गए और करों में वृद्धि की गई। सीमा शुल्क बढ़ा दिया गया और आयकर शुरू किया गया। युद्ध के दौरान क़ीमतें तेज़ी से बढ़ रही थीं। 1913 से 1918 के बीच क़ीमतें दोगुना हो चुकी थीं जिसके कारण आम लोगों की मुश्किलें बढ़ गई थीं। गाँवों में सिपाहियों को **जबरन भर्ती** किया गया जिसके कारण ग्रामीण इलाक़ों में व्यापक गुस्सा था। 1918-19 और 1920-21 में देश के बहुत सारे हिस्सों में फसल खराब हो गई जिसके कारण खाद्य पदार्थों का भारी अभाव पैदा हो गया। उसी समय फ़्लू की महामारी फैल गई। 1921 की जनगणना के मुताबिक़ दुर्भिक्ष और महामारी के कारण 120-130 लाख लोग मारे गए।

नए शब्द

जबरन भर्ती : इस प्रक्रिया में अंग्रेज़ भारत के लोगों को ज़बरदस्ती सेना में भर्ती कर लेते थे।

लोगों को उम्मीद थी कि युद्ध खत्म होने के बाद उनकी मुसीबतें कम हो जाएँगी। लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

इसी समय एक नया नेता सामने आया और उसने संघर्ष का एक नया ढंग, एक नया तरीक़ा पेश किया।

1.1 सत्याग्रह का विचार

महात्मा गांधी जनवरी 1915 में भारत लौटे। इससे पहले वे दक्षिण अफ़्रीका में थे। उन्होंने एक नए तरह के जनांदोलन के रास्ते पर चलते हुए वहाँ की

चित्र 2 - दक्षिण अफ़्रीका में भारतीय मज़दूर फ़ोकस्रस्ट से गुज़र रहे हैं, 6 नवंबर 1913

न्यूकैसल से ट्रांसवाल की ओर बढ़ रहे इस जुलूस में महात्मा गांधी मज़दूरों का नेतृत्व कर रहे थे। जब जुलूस को रोका गया और गांधीजी को गिरफ़्तार किया गया तो हज़ारों मज़दूर अश्वेतों के अधिकारों का हनन करने वाले नस्लभेदी क़ानूनों के ख़िलाफ़ सत्याग्रह में शामिल हो गए।

नस्लभेदी सरकार से सफलतापूर्वक लोहा लिया था। इस पद्धति को वे सत्याग्रह कहते थे। सत्याग्रह के विचार में सत्य की शक्ति पर आग्रह और सत्य की खोज पर ज़ोर दिया जाता था। इसका अर्थ यह था कि अगर आपका उद्देश्य सच्चा है, यदि आपका संघर्ष अन्याय के ख़िलाफ़ है तो उत्पीड़क से मुक़ाबला करने के लिए आपको किसी शारीरिक बल की आवश्यकता नहीं है। प्रतिशोध की भावना या आक्रामकता का सहारा लिए बिना सत्याग्रही केवल अहिंसा के सहारे भी अपने संघर्ष में सफल हो सकता है। इसके लिए दमनकारी शत्रु की चेतना को झिंझोड़ना चाहिए। उत्पीड़क शत्रु को ही नहीं बल्कि सभी लोगों को हिंसा के ज़रिए सत्य को स्वीकार करने पर विवश करने की बजाय सच्चाई को देखने और सहज भाव से स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। इस संघर्ष में अंततः सत्य की ही जीत होती है। गांधीजी का विश्वास था की अहिंसा का यह *धर्म* सभी भारतीयों को एकता के सूत्र में बाँध सकता है।

भारत आने के बाद गांधीजी ने कई स्थानों पर सत्याग्रह आंदोलन चलाया। 1917 में उन्होंने बिहार के चंपारन इलाक़े का दौरा किया और दमनकारी बागान व्यवस्था के ख़िलाफ किसानों को संघर्ष के लिए प्रेरित किया। 1917 में उन्होंने गुजरात के खेड़ा जिले के किसानों की मदद के लिए सत्याग्रह का आयोजन किया। फ़सल खराब हो जाने और प्लेग की महामारी के कारण खेड़ा जिले के किसान लगान चुकाने की हालत में नहीं थे। वे चाहते थे कि लगान वसूली में ढील दी जाए। 1918 में गांधीजी सूती कपड़ा कारखानों के मज़दूरों के बीच सत्याग्रह आंदोलन चलाने अहमदाबाद जा पहुँचे।

1.2 रॉलट एक्ट

इस कामयाबी से उत्साहित गांधीजी ने 1919 में प्रस्तावित रॉलट एक्ट (1919) के ख़िलाफ़ एक राष्ट्रव्यापी सत्याग्रह आंदोलन चलाने का फ़ैसला लिया। भारतीय सदस्यों के भारी विरोध के बावजूद इस क़ानून को इम्पीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल ने बहुत जल्दबाजी में पारित कर दिया था। इस क़ानून के ज़रिए सरकार को राजनीतिक गतिविधियों को कुचलने और राजनीतिक क़ैदियों को दो साल तक बिना मुक़दमा चलाए जेल में बंद रखने का अधिकार मिल गया था। महात्मा गांधी ऐसे अन्यायपूर्ण क़ानूनों के ख़िलाफ़ अहिंसक ढंग से नागरिक अवज्ञा चाहते थे। इसे 6 अप्रैल को एक हड़ताल से शुरू होना था।

विभिन्न शहरों में रैली-जुलूसों का आयोजन किया गया। रेलवे वर्कशॉप्स में कामगार हड़ताल पर चले गए। दुकानें बंद हो गईं। इस व्यापक जन-उभार से चिंतित तथा रेलवे व टेलीग्राफ़ जैसी संचार सुविधाओं के भंग हो जाने की आशंका से भयभीत अंग्रेजों ने राष्ट्रवादियों पर दमन शुरू कर दिया। अमृतसर में बहुत सारे स्थानीय नेताओं को हिरासत में ले लिया गया। गांधीजी के दिल्ली में प्रवेश करने पर पाबंदी लगा दी गई। 10 अप्रैल को पुलिस ने अमृतसर में एक शांतिपूर्ण जुलूस पर गोली चला दी। इसके बाद लोग बैंकों, डाकखानों और रेलवे स्टेशनों पर हमले करने लगे। मार्शल लॉ लागू कर दिया गया और जनरल डायर ने कमान सँभाल ली।

स्रोत-क

***सत्याग्रह* पर महात्मा गांधी के विचार**

'कहा जाता है कि "निष्क्रिय प्रतिरोध" दुर्बलों का हथियार है। लेकिन इस लेख में जिस शक्ति की बात की गई है उसे केवल ताक़तवर ही इस्तेमाल कर सकते हैं। यह निष्क्रिय प्रतिरोध की शक्ति नहीं है; इसके लिए तो सघन सक्रियता चाहिए। दक्षिण अफ़्रीका का आंदोलन निष्क्रिय नहीं बल्कि सक्रिय आंदोलन था...।

'सत्याग्रह शारीरिक बल नहीं है। सत्याग्रही अपने शत्रु को कष्ट नहीं पहुँचाता; वह अपने शत्रु का विनाश नहीं चाहता। ...सत्याग्रह के प्रयोग में दुर्भावना के लिए कोई स्थान नहीं होता।

'सत्याग्रह तो शुद्ध आत्मबल है। सत्य ही आत्मा का आधार होता है। इसीलिए इस बल को सत्याग्रह का नाम दिया गया है। आत्मा ज्ञान से हमेशा लैस होती है। इसमें प्यार की लौ जलती है...। अहिंसा सर्वोच्च धर्म है...।

'इसमें कोई संदेह नहीं कि भारत विनाशकारी शस्त्रों के मामले में ब्रिटेन या यूरोप का मुक़ाबला नहीं कर सकता। अंग्रेज़ युद्ध के देवता की उपासना करते हैं। वे सब हथियारों से लैस हो सकते हैं, होते जा रहे हैं। भारत में करोड़ों लोग कभी हथियार लेकर नहीं चल सकते। उन्होंने अहिंसा के धर्म को आत्मसात् कर लिया है...।'

स्रोत

गतिविधि

स्रोत-क को ध्यान से पढ़ें। जब महात्मा गांधी ने सत्याग्रह को सक्रिय प्रतिरोध कहा तो इससे उनका क्या आशय था?

13 अप्रैल को जलियाँवाला बाग़ हत्याकांड हुआ। उस दिन अमृतसर में बहुत सारे गाँव वाले सालाना वैसाखी मेले में शिरकत करने के लिए जलियाँवाला बाग़ मैदान में जमा हुए थे। काफी लोग तो सरकार द्वारा लागू किए गए दमनकारी कानून का विरोध प्रकट करने के लिए एकत्रित हुए। यह मैदान चारों तरफ़ से बंद था। शहर से बाहर होने के कारण वहाँ जुटे लोगों को यह पता नहीं था कि इलाक़े में मार्शल लॉ लागू किया जा चुका है। जनरल डायर हथियारबंद सैनिकों के साथ वहाँ पहुँचा और जाते ही उसने मैदान से बाहर निकलने के सारे रास्तों को बंद कर दिया। इसके बाद उसके सिपाहियों ने भीड़ पर अंधाधुंध गोलियाँ चला दीं। सैंकड़ों लोग मारे गए। बाद में उसने बताया कि वह सत्याग्रहियों के ज़हन में दहशत और विस्मय का भाव पैदा करके 'एक नैतिक प्रभाव' उत्पन्न करना चाहता था।

चित्र 3 - जनरल डायर के हुक्म से सिपाही लोगों को घिसट कर चलने के लिए मजबूर कर रहे हैं, पंजाब, 1919

जैसे-जैसे जलियाँवाला बाग़ की खबर फैली, उत्तर भारत के बहुत सारे शहरों में लोग सड़कों पर उतरने लगे। हड़तालें होने लगीं, लोग पुलिस से मोर्चा लेने लगे और सरकारी इमारतों पर हमला करने लगे। सरकार ने इन कार्रवाइयों को निर्ममता से कुचलने का रास्ता अपनाया। सरकार लोगों को अपमानित और आतंकित करना चाहती थी। सत्याग्रहियों को ज़मीन पर नाक रगड़ने के लिए, सड़क पर घिसट कर चलने और सारे साहिबों को सलाम मारने के लिए मजबूर किया गया। लोगों को कोड़े मारे गए और गाँवों (गुजराँवाला, पंजाब) पर बम बरसाए गए। हिंसा फैलते देख महात्मा गांधी ने आंदोलन वापस ले लिया।

भले ही रॉलट सत्याग्रह एक बहुत बड़ा आंदोलन था लेकिन अभी भी वह मुख्य रूप से शहरों और क़स्बों तक ही सीमित था। महात्मा गांधी पूरे भारत में और भी ज़्यादा जनाधार वाला आंदोलन खड़ा करना चाहते थे। लेकिन उनका मानना था कि हिंदू-मुसलमानों को एक-दूसरे के नज़दीक लाए बिना ऐसा कोई आंदोलन नहीं चलाया जा सकता। उन्हें लगता था कि ख़िलाफ़त का मुद्दा उठाकर वे दोनों समुदायों को नज़दीक ला सकते हैं। पहले विश्वयुद्ध में ऑटोमन तुर्की की हार हो चुकी थी। इस आशय की अफ़वाहें फैली हुई थीं कि इस्लामिक विश्व के आध्यात्मिक नेता (ख़लीफ़ा) ऑटोमन सम्राट पर एक बहुत सख्त शांति संधि थोपी जाएगी। ख़लीफ़ा की तात्कालिक शक्तियों की रक्षा के लिए मार्च 1919 में बंबई में एक ख़िलाफ़त समिति का गठन किया गया था। मोहम्मद अली और शौकत अली बंधुओं के साथ-साथ कई युवा मुस्लिम नेताओं ने इस मुद्दे पर संयुक्त जनकार्रवाई की संभावना तलाशने के लिए महात्मा गांधी के साथ चर्चा शुरू कर दी थी। सितंबर 1920 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में महात्मा गांधी ने भी दूसरे नेताओं को इस बात पर राज़ी कर लिया कि ख़िलाफ़त आंदोलन के समर्थन और स्वराज के लिए एक असहयोग आंदोलन शुरू किया जाना चाहिए।

1.3 असहयोग ही क्यों?

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *हिंद स्वराज* (1909) में महात्मा गांधी ने कहा था कि भारत में ब्रिटिश शासन भारतीयों के सहयोग से ही स्थापित हुआ था और यह शासन इसी सहयोग के कारण चल पा रहा है। अगर भारत के लोग अपना सहयोग वापस ले लें तो साल भर के भीतर ब्रिटिश शासन ढह जाएगा और स्वराज की स्थापना हो जाएगी।

असहयोग का विचार आंदोलन कैसे बन सकता था? गांधीजी का सुझाव था कि यह आंदोलन चरणबद्ध तरीक़े से आगे बढ़ना चाहिए। सबसे पहले लोगों को सरकार द्वारा दी गई पदवियाँ लौटा देनी चाहिए और सरकारी नौकरियों, सेना, पुलिस, अदालतों, विधायी परिषदों, स्कूलों और विदेशी वस्तुओं का **बहिष्कार** करना चाहिए। अगर सरकार दमन का रास्ता अपनाती है तो व्यापक सविनय अवज्ञा अभियान भी शुरू किया जाए। 1920 की गर्मियों में गांधीजी और शौकत अली आंदोलन के लिए समर्थन जुटाते हुए देश भर में यात्राएँ करते रहे।

कांग्रेस में बहुत सारे लोग इन प्रस्तावों पर सशंकित थे। वे नवंबर 1920 में विधायी परिषद के लिए होने वाले चुनावों का बहिष्कार करने में हिचकिचा रहे थे। उन्हें भय था कि इस आंदोलन में लोग हिंसा कर सकते हैं। सितंबर से दिसंबर तक कांग्रेस में भारी खींचतान चलती रही। कुछ समय के लिए ऐसा लगा कि आंदोलन के समर्थकों और विरोधियों के बीच सहमति नहीं बन पाएगी। आखिरकार दिसंबर 1920 में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में एक समझौता हुआ और असहयोग कार्यक्रम पर स्वीकृति की मोहर लगा दी गई।

आंदोलन किस तरह आगे बढ़ा? उसमें किन लोगों ने हिस्सा लिया? विभिन्न सामाजिक समूहों ने असहयोग के विचार को किस तरह समझा?

नए शब्द

बहिष्कार : किसी के साथ संपर्क रखने और जुड़ने से इनकार करना या गतिविधियों में हिस्सेदारी, चीजों की खरीद व इस्तेमाल से इनकार करना। आमतौर पर यह विरोध का एक रूप होता है।

चित्र 4 – विदेशी कपड़े का बहिष्कार, जुलाई 1922
विदेशी कपड़ों को पश्चिमी आर्थिक एवं सांस्कृतिक प्रभुत्व का प्रतीक माना जाता था।

2 आंदोलन के भीतर अलग-अलग धाराएँ

असहयोग-ख़िलाफ़त आंदोलन जनवरी 1921 में शुरू हुआ। इस आंदोलन में विभिन्न सामाजिक समूहों ने हिस्सा लिया लेकिन हरेक की अपनी-अपनी आकांक्षाएँ थीं। सभी ने स्वराज के आह्वान को स्वीकार तो किया लेकिन उनके लिए उसके अर्थ अलग-अलग थे।

2.1 शहरों में आंदोलन

आंदोलन की शुरुआत शहरी मध्यवर्ग की हिस्सेदारी के साथ हुई। हज़ारों विद्यार्थियों ने स्कूल-कॉलेज छोड़ दिए। हेडमास्टरों और शिक्षकों ने इस्तीफ़े सौंप दिए। वकीलों ने मुक़दमे लड़ना बंद कर दिया। मद्रास के अलावा ज़्यादातर प्रांतों में परिषद् चुनावों का बहिष्कार किया गया। मद्रास में ग़ैर-ब्राह्मणों द्वारा बनाई गई जस्टिस पार्टी का मानना था कि काउंसिल में प्रवेश के ज़रिए उन्हें वे अधिकार मिल सकते हैं जो सामान्य रूप से केवल ब्राह्मणों को मिल पाते हैं इसलिए इस पार्टी ने चुनावों का बहिष्कार नहीं किया।

आर्थिक मोर्चे पर असहयोग का असर और भी ज़्यादा नाटकीय रहा। विदेशी सामानों का बहिष्कार किया गया, शराब की दुकानों की **पिकेटिंग** की गई, और विदेशी कपड़ों की होली जलाई जाने लगी। 1921 से 1922 के बीच विदेशी कपड़ों का आयात आधा रह गया था। उसकी क़ीमत 102 करोड़ से घटकर 57 करोड़ रह गई। बहुत सारे स्थानों पर व्यापारियों ने विदेशी चीज़ों का व्यापार करने या विदेशी व्यापार में पैसा लगाने से इनकार कर दिया। जब बहिष्कार आंदोलन फैला और लोग आयातित कपड़े को छोड़कर केवल भारतीय कपड़े पहनने लगे तो भारतीय कपड़ा मिलों और हथकरघों का उत्पादन भी बढ़ने लगा।

कुछ समय बाद शहरों में यह आंदोलन धीमा पड़ने लगा। इसके कई कारण थे। खादी का कपड़ा मिलों में भारी पैमाने पर बनने वाले कपड़ों के मुक़ाबले प्रायः मँहगा होता था और ग़रीब उसे नहीं ख़रीद सकते थे। वे मिलों के कपड़े का लंबे समय तक बहिष्कार कैसे कर सकते थे? ब्रिटिश संस्थानों के बहिष्कार से भी समस्या पैदा हो गई। आंदोलन की कामयाबी के लिए वैकल्पिक भारतीय संस्थानों की स्थापना ज़रूरी थी ताकि ब्रिटिश संस्थानों के स्थान पर उनका प्रयोग किया जा सके। लेकिन वैकल्पिक संस्थानों की स्थापना की प्रक्रिया बहुत धीमी थी। फलस्वरूप, विद्यार्थी और शिक्षक सरकारी स्कूलों में लौटने लगे और वकील दोबारा सरकारी अदालतों में दिखाई देने लगे।

नए शब्द

पिकेटिंग : प्रदर्शन या विरोध का एक ऐसा स्वरूप जिसमें लोग किसी दुकान, फ़ैक्ट्री या दफ़्तर के भीतर जाने का रास्ता रोक लेते हैं।

गतिविधि

मान लीजिए कि साल 1920 चल रहा है। आप सरकारी स्कूल के विद्यार्थी हैं। विद्यार्थियों को असहयोग आंदोलन से जुड़ने का आह्वान करते हुए एक पोस्टर बनाइए।

2.2 ग्रामीण इलाक़ों में विद्रोह

शहरों से बढ़कर असहयोग आंदोलन देहात में भी फैल गया था। युद्ध के बाद देश के विभिन्न भागों में चले किसानों व आदिवासियों के संघर्ष भी इस आंदोलन में समा गए।

अवध में संन्यासी बाबा रामचंद्र किसानों का नेतृत्व कर रहे थे। बाबा रामचंद्र इससे पहले फिजी में **गिरमिटिया मज़दूर** के तौर पर काम कर चुके थे। उनका आंदोलन तालुक़दारों और ज़मींदारों के ख़िलाफ़ था जो किसानों से भारी-भरकम लगान और तरह-तरह के कर वसूल कर रहे थे। किसानों को **बेगार** करनी पड़ती थी। पट्टेदार के तौर पर उनके पट्टे निश्चित नहीं होते थे। उन्हें बार-बार पट्टे की जमीन से हटा दिया जाता था ताकि जमीन पर उनका कोई अधिकार स्थापित न हो सके। किसानों की माँग थी कि लगान कम किया जाए, बेगार खत्म हो और दमनकारी ज़मींदारों का सामाजिक बहिष्कार किया जाए। बहुत सारे स्थानों पर ज़मींदारों को नाई-धोबी की सुविधाओं से भी वंचित करने के लिए पंचायतों ने *नाई-धोबी* बंद का फ़ैसला लिया। जून 1920 में जवाहर लाल नेहरू ने अवध के गाँवों का दौरा किया, गाँववालों से बातचीत की और उनकी व्यथा समझने का प्रयास किया। अक्तूबर तक जवाहर लाल नेहरू, बाबा रामचंद्र तथा कुछ अन्य लोगों के नेतृत्व में अवध किसान सभा का गठन कर लिया गया। महीने भर में इस पूरे इलाक़े के गाँवों में संगठन की 300 से ज़्यादा शाखाएँ बन चुकी थीं। अगले साल जब असहयोग आंदोलन शुरू हुआ तो कांग्रेस ने अवध के किसान संघर्ष को इस आंदोलन में शामिल करने का प्रयास किया लेकिन किसानों के आंदोलन में ऐसे स्वरूप विकसित हो चुके थे जिनसे कांग्रेस का नेतृत्व खुश नहीं था। 1921 में जब आंदोलन फैला तो तालुक़दारों और व्यापारियों के मकानों पर हमले होने लगे, बाज़ारों में लूटपाट होने लगी और अनाज के गोदामों पर क़ब्ज़ा कर लिया गया। बहुत सारे स्थानों पर स्थानीय नेता किसानों को समझा रहे थे कि गांधीजी ने ऐलान कर दिया है कि अब कोई लगान नहीं भरेगा और जमीन गरीबों में बाँट दी जाएगी। महात्मा का नाम लेकर लोग अपनी सारी कार्रवाइयों और आकांक्षाओं को सही ठहरा रहे थे।

आदिवासी किसानों ने महात्मा गांधी के संदेश और स्वराज के विचार का कुछ और ही मतलब निकाला। उदाहरण के लिए, आंध्र प्रदेश की गूडेम पहाड़ियों में 1920 के दशक की शुरुआत में एक उग्र गुरिल्ला आंदोलन फैल गया। कांग्रेस इस तरह के संघर्ष को कभी स्वीकार नहीं कर सकती थी। अन्य वन

नए शब्द

बेगार : बिना किसी पारिश्रमिक के काम करवाना।

गिरमिटिया मज़दूर : औपनिवेशिक शासन के दौरान बहुत सारे लोगों को काम करने के लिए फ़िजी, गयाना, वेस्टइंडीज़ आदि स्थानों पर ले जाया गया था जिन्हें बाद में गिरमिटिया कहा जाने लगा। उन्हें एक एग्रीमेंट (अनुबंध) के तहत ले जाया जाता था। बाद में इसी एग्रीमेंट को ये मज़दूर गिरमिट कहने लगे जिससे आगे चलकर इन मज़दूरों को गिरमिटिया मजदूर कहा जाने लगा। अंग्रेज़ी में इन्हें Indentured Labour कहा जाता है।

गतिविधि

अगर आप 1920 में उत्तर प्रदेश में किसान होते तो स्वराज के लिए गांधीजी के आह्वान पर क्या प्रतिक्रिया देते? अपने उत्तर के साथ कारण भी बताइए।

1928 में वल्लभ भाई पटेल ने गुजरात के बारदोली तालुका में किसान आंदोलन का नेतृत्व किया, जो कि भू-राजस्व को बढ़ाने के खिलाफ़ था। यह बारदोली सत्याग्रह के नाम से जाना जाता है और यह आंदोलन वल्लभ भाई पटेल के सक्षम नेतृत्व के तहत सफल रहा। इस संघर्ष का प्रचार व्यापक रूप से हुआ और इसे भारत के कई हिस्सों में अत्यधिक सहानुभूति प्राप्त हुई।

स्रोत-ख

6 जनवरी 1921 को संयुक्त प्रांत में रायबरेली के पास पुलिस ने किसानों पर गोली चलाई। जवाहरलाल नेहरू घटनास्थल का दौरा करना चाहते थे। लेकिन पुलिस ने उन्हें रोक दिया। गुस्से में नेहरू ने अपने आसपास खड़े किसानों को ही संबोधित किया। बाद में इस सभा के बारे में उन्होंने बताया था–

'उनका आचरण खतरे के सामने होते हुए भी बहादुर, शांत और निश्चिंत लोगों जैसे था। पता नहीं उन्हें क्या महसूस हो रहा था लेकिन मुझे पता है कि मैं क्या महसूस कर रहा था। एक पल के लिए मेरा भी खून खौल उठा था, अहिंसा तो न जाने कहाँ छूट गई थी – लेकिन सिर्फ़ एक पल के लिए। जिसे ईश्वर की कृपा से हमें विजयद्वार पर ले जाने के लिए भेजा गया है उस महान नेता के विचार मुझे याद आ गए और मैंने देखा कि मेरे आसपास बैठे और खड़े किसान मेरे से कम उत्तेजित, मेरे से ज़्यादा शांत थे। मेरी दुर्बलता का यह क्षण बीत गया। मैंने पूरी विनम्रता के साथ अहिंसा पर उनसे बात की – यह सबक उनसे ज़्यादा मुझे सीखना था – उन्होंने मेरी बात समझी और शांति से चले गए।

सर्वपल्ली गोपाल, *जवाहरलाल नेहरू : एक जीवनी*, खंड 1 में उद्धृत।

क्षेत्रों की तरह यहाँ भी अंग्रेजी सरकार ने बड़े-बड़े जंगलों में लोगों के दाखिल होने पर पाबंदी लगा दी थी। लोग इन जंगलों में न तो मवेशियों को चरा सकते थे न ही जलावन के लिए लकड़ी और फल बीन सकते थे। इससे पहाड़ों के लोग परेशान और गुस्सा थे। न केवल उनकी रोज़ी-रोटी पर असर पड़ रहा था बल्कि उन्हें लगता था कि उनके परंपरागत अधिकार भी छीने जा रहे हैं। जब सरकार ने उन्हें सड़कों के निर्माण के लिए बेगार करने पर मजबूर किया तो लोगों ने बग़ावत कर दी। उनका नेतृत्व करने वाले अल्लूरी सीताराम राजू एक दिलचस्प व्यक्ति थे। उनका दावा था कि उनके पास बहुत सारी विशेष शक्तियाँ हैं : वह सटीक खगोलीय अनुमान लगा सकते हैं, लोगों को स्वस्थ कर सकते हैं तथा गोलियाँ भी उन्हें नहीं मार सकतीं। राजू के व्यक्तित्व से चमत्कृत विद्रोहियों को विश्वास था कि वह ईश्वर का अवतार है। राजू महात्मा गांधी की महानता के गुण गाते थे। उनका कहना था कि वह असहयोग आंदोलन से प्रेरित हैं। उन्होंने लोगों को खादी पहनने तथा शराब छोड़ने के लिए प्रेरित किया। साथ ही उन्होंने यह दावा भी किया कि भारत अहिंसा के बल पर नहीं बल्कि केवल बलप्रयोग के ज़रिए ही आज़ाद हो सकता है। गूडेम विद्रोहियों ने पुलिस थानों पर हमले किए, ब्रिटिश अधिकारियों को मारने की कोशिश की और स्वराज प्राप्ति के लिए गुरिल्ला युद्ध चलाते रहे। 1924 में राजू को फाँसी दे दी गई। राजू अपने लोगों के बीच लोकनायक बन चुके।

2.3 बागानों में स्वराज

महात्मा गांधी के विचारों और स्वराज की अवधारणा के बारे में मज़दूरों की अपनी समझ थी। असम के बागानी मज़दूरों के लिए आज़ादी का मतलब यह था कि वे उन चारदीवारियों से जब चाहे आ-जा सकते हैं जिनमें उनको बंद करके रखा गया था। उनके लिए आज़ादी का मतलब था कि वे अपने गाँवों से संपर्क रख पाएँगे। 1859 के इनलैंड इमिग्रेशन एक्ट के तहत बाग़ानों में काम करने वाले मज़दूरों को बिना इजाज़त बागान से बाहर जाने की छूट नहीं होती थी और यह इजाज़त उन्हें विरले ही कभी मिलती थी। जब उन्होंने असहयोग आंदोलन के बारे में सुना तो हज़ारों मज़दूर अपने अधिकारियों की अवहेलना करने लगे। उन्होंने बागान छोड़ दिए और अपने घर को चल दिए। उनको लगता था कि अब गांधी राज आ रहा है इसलिए अब तो हरेक को गाँव में ज़मीन मिल जाएगी। लेकिन वे अपनी मंज़िल पर नहीं पहुँच पाए। रेलवे और स्टीमरों की हड़ताल के कारण वे रास्ते में ही फँसे रह गए। उन्हें पुलिस ने पकड़ लिया और उनकी बुरी तरह पिटाई हुई।

इन स्थानीय आंदोलनों की अपेक्षाओं और दृष्टियों को कांग्रेस के कार्यक्रम में परिभाषित नहीं किया गया था। उन्होंने तो स्वराज शब्द का अपने-अपने हिसाब से अर्थ निकाल लिया था। उनके लिए यह एक ऐसे युग का द्योतक था जब सारे कष्ट और सारी मुसीबतें खत्म हो जाएँगी। फिर भी, जब

गतिविधि

राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल ऐसे अन्य लोगों के बारे में पता लगाइए जिन्हें अंग्रेज़ों ने पकड़कर मौत के घाट उतार दिया था। क्या ऐसा ही उदाहरण आप इंडो-चाइना (अध्याय 2) के राष्ट्रीय आंदोलन में भी बता सकते हैं?

आदिवासियों ने गांधीजी के नाम का नारा लगाया और 'स्वतंत्र भारत' की हुंकार भरी तो वे एक अखिल भारतीय आंदोलन से भी भावनात्मक स्तर पर जुड़े हुए थे। जब वे महात्मा गांधी का नाम लेकर काम करते थे या अपने आंदोलन को कांग्रेस के आंदोलन से जोड़कर देखते थे तो वास्तव में एक ऐसे आंदोलन का अंग बन जाते थे जो उनके इलाक़े तक ही सीमित नहीं था।

चित्र 5 – चौरी-चौरा, 1922
गोरखपुर स्थित चौरी-चौरा में बाज़ार से गुज़र रहा एक शांतिपूर्ण जुलूस पुलिस के साथ हिंसक टकराव में बदल गया। इस घटना के बारे में सुनते ही महात्मा गांधी ने असहयोग आंदोलन रोकने का आह्वान किया।

3 सविनय अवज्ञा की ओर

फ़रवरी 1922 में महात्मा गांधी ने असहयोग आंदोलन वापस लेने का फ़ैसला कर लिया। उनको लगता था कि आंदोलन हिंसक होता जा रहा है और सत्याग्रहियों को व्यापक प्रशिक्षण की ज़रूरत है। कांग्रेस के कुछ नेता इस तरह के जनसंघर्षों से थक चुके थे। वे 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया एक्ट के तहत गठित की गई प्रांतीय परिषदों के चुनाव में हिस्सा लेना चाहते थे। उनको लगता था कि परिषदों में रहते हुए ब्रिटिश नीतियों का विरोध करना, सुधारों की वकालत करना और यह दिखाना भी महत्त्वपूर्ण है कि ये परिषदें लोकतांत्रिक संस्था नहीं हैं। सी.आर. दास और मोतीलाल नेहरू ने परिषद् राजनीति में वापस लौटने के लिए कांग्रेस के भीतर ही स्वराज पार्टी का गठन कर डाला। जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचंद्र बोस जैसे युवा नेता ज़्यादा उग्र जनांदोलन और पूर्ण स्वतंत्रता के लिए दबाव बनाए हुए थे।

आंतरिक बहस व असहमति के इस माहौल में दो ऐसे तत्व थे जिन्होंने बीस के दशक के आखिरी सालों में भारतीय राजनीति की रूपरेखा एक बार फिर बदल दी। पहला कारक था विश्वव्यापी आर्थिक मंदी का असर। 1926 से कृषि उत्पादों की क़ीमतें गिरने लगी थीं और 1930 के बाद तो पूरी तरह धराशायी हो गईं। कृषि उत्पादों की माँग गिरी और निर्यात कम होने लगा तो किसानों को अपनी उपज बेचना और लगान चुकाना भी भारी पड़ने लगा। 1930 तक ग्रामीण इलाक़े भारी उथल-पुथल से गुजरने लगे थे।

साइमन कमीशन के खिलाफ़ शांतिपूर्ण प्रदर्शन के दौरान ब्रिटिश पुलिस ने लाला लाजपत राय पर हमला किया। प्रदर्शन के दौरान मिले गहरे ज़ख्मों के कारण उन्होंने दम तोड़ दिया।

इसी पृष्ठभूमि में ब्रिटेन की नयी टोरी सरकार ने सर जॉन साइमन के नेतृत्व में एक वैधानिक आयोग का गठन कर दिया। राष्ट्रवादी आंदोलन के जवाब में गठित किए गए इस आयोग को भारत में संवैधानिक व्यवस्था की कार्यशैली का अध्ययन करना था और उसके बारे में सुझाव देने थे। इस आयोग में एक भी भारतीय सदस्य नहीं था सारे अंग्रेज़ थे।

1928 में जब साइमन कमीशन भारत पहुँचा तो उसका स्वागत 'साइमन कमीशन वापस जाओ' (साइमन कमीशन गो बैक) के नारों से किया गया। कांग्रेस और मुस्लिम लीग, सभी पार्टियों ने प्रदर्शनों में हिस्सा लिया। इस विरोध को शांत करने के लिए वायसराय लॉर्ड इरविन ने अक्तूबर 1929 में भारत के लिए 'डोमीनियन स्टेटस' का गोलमोल सा ऐलान कर दिया। उन्होंने इस बारे में कोई समय सीमा भी नहीं बताई। उन्होंने सिर्फ़ इतना कहा कि भावी संविधान के बारे में चर्चा करने के लिए गोलमेज़ सम्मेलन आयोजित किया जाएगा। इस प्रस्ताव से कांग्रेस के नेता संतुष्ट नहीं थे। जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचंद्र बोस के नेतृत्व में कांग्रेस का तेज़-तर्रार खेमा आक्रामक तेवर अपनाने लगा था। उदारवादी और

चित्र 6 – इलाहाबाद में कांग्रेस के नेताओं की बैठक, 1931
महात्मा गांधी के अलावा इस चित्र में आप सरदार वल्लभ भाई पटेल (सबसे बाएँ), जवाहरलाल नेहरू (सबसे दाएँ) और सुभाषचंद्र बोस (बाएँ से पाँचवें) को भी देख सकते हैं।

मध्यमार्गी नेता ब्रिटिश डोमीनियन के भीतर ही संवैधानिक व्यवस्था के पक्ष में थे। लेकिन इस खेमे का प्रभाव घटता जा रहा था। दिसंबर 1929 में जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में 'पूर्ण स्वराज' की माँग को औपचारिक रूप से मान लिया गया। तय किया गया कि 26 जनवरी 1930 को स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाया जाएगा और उस दिन लोग पूर्ण स्वराज के लिए संघर्ष की शपथ लेंगे। इस उत्सव की ओर बहुत कम ही लोगों ने ध्यान दिया। अब स्वतंत्रता के इस अमूर्त विचार को रोज़मर्रा ज़िन्दगी के ठोस मुद्दों से जोड़ने के लिए महात्मा गांधी को कोई और रास्ता ढूँढ़ना था।

3.1 नमक यात्रा और सविनय अवज्ञा आंदोलन

देश को एकजुट करने के लिए महात्मा गांधी को नमक एक शक्तिशाली प्रतीक दिखाई दिया। 31 जनवरी 1930 को उन्होंने वायसराय इरविन को एक खत लिखा। इस खत में उन्होंने 11 माँगों का उल्लेख किया था। इनमें से कुछ सामान्य माँगें थीं जबकि कुछ माँगें उद्योगपतियों से लेकर किसानों तक विभिन्न तबक़ों से जुड़ी थीं। गांधीजी इन माँगों के ज़रिए समाज के सभी वर्गों को अपने साथ जोड़ना चाहते थे ताकि सभी उनके अभियान में शामिल हो सकें। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण माँग नमक कर को खत्म करने के बारे में थी। नमक का अमीर-ग़रीब, सभी इस्तेमाल करते थे। यह भोजन का एक अभिन्न हिस्सा था। इसीलिए नमक पर कर और उसके उत्पादन पर सरकारी इज़ारेदारी को महात्मा गांधी ने ब्रिटिश शासन का सबसे दमनकारी पहलू बताया था।

महात्मा गांधी का यह पत्र एक अल्टीमेटम (चेतावनी) की तरह था। उन्होंने लिखा था कि अगर 11 मार्च तक उनकी माँगें नहीं मानी गई तो कांग्रेस सविनय अवज्ञा आंदोलन छेड़ देगी। इरविन झुकने को तैयार नहीं थे। फलस्वरूप, महात्मा गांधी ने अपने 78 विश्वस्त वॉलंटियरों के साथ नमक यात्रा शुरू कर दी। यह यात्रा साबरमती में गांधीजी के आश्रम से 240 किलोमीटर दूर दांडी नामक गुजराती तटीय क़स्बे में जाकर खत्म होनी थी। गांधीजी की टोली ने 24 दिन तक हर रोज़ लगभग 10 मील का सफ़र तय किया। गांधीजी जहाँ भी रुकते हज़ारों लोग उन्हें सुनने आते। इन सभाओं में गांधीजी ने स्वराज का अर्थ स्पष्ट किया और आह्वान किया कि लोग अंग्रेज़ों की शांतिपूर्वक अवज्ञा करें यानी अंग्रेज़ों का कहा न मानें। 6 अप्रैल को वह दांडी पहुँचे और उन्होंने समुद्र का पानी उबालकर नमक बनाना शुरू कर दिया। यह क़ानून का उल्लंघन था।

यहीं से सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू होता है। यह आंदोलन असहयोग आंदोलन के मुक़ाबले किस तरह अलग था? इस बार लोगों को न केवल अंग्रेज़ों का सहयोग न करने के लिए बल्कि औपनिवेशिक क़ानूनों का उल्लंघन करने के लिए आह्वान किया जाने लगा। देश के विभिन्न भागों में

स्रोत-ग

स्वतंत्रता दिवस की शपथ, 26 जनवरी 1930

'हमारा विश्वास है कि किसी भी समाज की तरह भारतीय जनता का भी यह एक अहरणीय (inalienable) अधिकार है कि उन्हें आज़ादी मिले, अपनी मेहनत का फल मिले, और जीवन की सभी आवश्यकताएँ पूरी हों जिससे उन्हें आगे बढ़ने के परिपूर्ण अवसर मिलें। हमारा यह भी विश्वास है कि यदि कोई भी सरकार अपनी जनता को इन अधिकारों से वंचित रखती है और दबाती है तो जनता को भी सरकार को बदलने या उसे समूल समाप्त करने का अधिकार है। भारत में ब्रितानी सरकार ने न केवल भारतीय जनता को स्वतंत्रता से वंचित किया है बल्कि उसने जनता का शोषण किया है और देश को आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर नष्ट कर दिया है। इसलिए हमारा विश्वास है कि भारत को अनिवार्य रूप से ब्रिटेन के साथ अपने सभी संबंधों को समाप्त करके पूर्ण स्वराज प्राप्त करना चाहिए।'

चित्र 7 – दांडी मार्च।
नमक यात्रा के दौरान महात्मा गांधी के साथ उनके 78 सहयोगी भी गए थे। रास्ते में हज़ारों लोग इस यात्रा में जुड़ते गए।

हज़ारों लोगों ने नमक क़ानून तोड़ा, और सरकारी नमक कारखानों के सामने प्रदर्शन किए। आंदोलन फैला तो विदेशी कपड़ों का बहिष्कार किया जाने लगा। शराब की दुकानों की पिकेटिंग होने लगी। किसानों ने लगान और चौकीदारी कर चुकाने से इनकार कर दिया। गाँवों में तैनात कर्मचारी इस्तीफ़े देने लगे। बहुत सारे स्थानों पर जंगलों में रहने वाले वन क़ानूनों का उल्लंघन करने लगे। वे लकड़ी बीनने और मवेशियों को चराने के लिए आरक्षित वनों में घुसने लगे।

इन घटनाओं से चिंतित औपनिवेशिक सरकार कांग्रेसी नेताओं को गिरफ़्तार करने लगी। बहुत सारे स्थानों पर हिंसक टकराव हुए। अप्रैल 1930 में जब महात्मा गांधी के समर्पित साथी अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ान को गिरफ़्तार किया गया तो गुस्साई भीड़ सशस्त्र बख़्तरबंद गाड़ियों और पुलिस की गोलियों का सामना करते हुए सड़कों पर उतर आई। बहुत सारे लोग मारे गए। महीने भर बाद जब महात्मा गांधी को भी गिरफ़्तार कर लिया गया तो शोलापुर के औद्योगिक मज़दूरों ने अंग्रेज़ी शासन का प्रतीक पुलिस चौकियों, नगरपालिका भवनों, अदालतों और रेलवे स्टेशनों पर हमले शुरू कर दिए। भयभीत सरकार ने निर्मम दमन का रास्ता अपनाया। शांतिपूर्ण सत्याग्रहियों पर हमले किए गए, औरतों व बच्चों को मारा–पीटा गया और लगभग एक लाख लोग गिरफ़्तार किए गए।

महात्मा गांधी ने एक बार फिर आंदोलन वापस ले लिया। 5 मार्च 1931 को उन्होंने इरविन के साथ एक समझौते पर दस्तखत कर दिए। इस गांधी–इरविन समझौते के ज़रिए गांधीजी ने लंदन में होने वाले दूसरे गोलमेज़ सम्मेलन में हिस्सा लेने पर अपनी सहमति व्यक्त कर दी (पहले

चित्र 8 – सत्याग्रहियों पर हमला करती पुलिस, 1930

गोलमेज़ सम्मेलन का कांग्रेस बहिष्कार कर चुकी थी)। इसके बदले सरकार राजनीतिक क़ैदियों को रिहा करने पर राज़ी हो गई। दिसंबर 1931 में सम्मेलन के लिए गांधीजी लंदन गए। यह वार्ता बीच में ही टूट गई और उन्हें निराश वापस लौटना पड़ा। यहाँ आकर उन्होंने पाया कि सरकार ने नए सिरे से दमन शुरू कर दिया है। गफ़्फ़ार ख़ान और जवाहरलाल नेहरू, दोनों जेल में थे। कांग्रेस को ग़ैरक़ानूनी घोषित कर दिया गया था। सभाओं, प्रदर्शनों और बहिष्कार जैसी गतिविधियों को रोकने के लिए सख़्त क़दम उठाए जा रहे थे। भारी आशंकाओं के बीच महात्मा गांधी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन दोबारा शुरू कर दिया। साल भर तक आंदोलन चला लेकिन 1934 तक आते-आते उसकी गति मंद पड़ने लगी थी।

3.2 लोगों ने आंदोलन को कैसे लिया

आइए देखें कि सिविल नाफ़रमानी या सविनय अवज्ञा आंदोलन में शामिल विभिन्न सामाजिक समूह कौन से थे? उन्होंने आंदोलन में हिस्सा क्यों लिया? उनके आदर्श क्या थे? उनके लिए स्वराज के क्या मायने थे?

गाँवों में संपन्न किसान समुदाय-जैसे गुजरात के पटीदार और उत्तर प्रदेश के जाट-आंदोलन में सक्रिय थे। व्यावसायिक फसलों की खेती करने के कारण व्यापार में मंदी और गिरती क़ीमतों से वे बहुत परेशान थे। जब उनकी नक़द आय खत्म होने लगी तो उनके लिए सरकारी लगान चुकाना नामुमकिन हो गया। सरकार लगान कम करने को तैयार नहीं थी। चारों तरफ़ असंतोष था। संपन्न किसानों ने सविनय अवज्ञा आंदोलन का बढ़-चढ़ कर समर्थन किया। उन्होंने अपने समुदायों को एकजुट किया और कई बार अनिच्छुक सदस्यों को बहिष्कार के लिए मजबूर किया। उनके लिए स्वराज की लड़ाई भारी लगान के ख़िलाफ़ लड़ाई थी। लेकिन जब 1931 में लगानों के घटे बिना आंदोलन वापस ले लिया गया तो उन्हें बड़ी निराशा हुई। फलस्वरूप, जब 1932 में आंदोलन दुबारा शुरू हुआ तो उनमें से बहुतों ने उसमें हिस्सा लेने से इनकार कर दिया।

ग़रीब किसान केवल लगान में कमी नहीं चाहते थे। उनमें से बहुत सारे किसान जमींदारों से पट्टे पर जमीन लेकर खेती कर रहे थे। महामंदी लंबी खिंची और नक़द आमदनी गिरने लगी तो छोटे पट्टेदारों के लिए ज़मीन का किराया चुकाना भी मुश्किल हो गया। वे चाहते थे कि उन्हें ज़मींदारों को जो भाड़ा चुकाना था उसे माफ़ कर दिया जाए। इसके लिए उन्होंने कई रेडिकल आंदोलनों में हिस्सा लिया जिनका नेतृत्व अकसर समाजवादियों और कम्युनिस्टों के हाथों में होता था। अमीर किसानों और ज़मींदारों की नाराज़गी के भय से कांग्रेस 'भाड़ा विरोधी' आंदोलनों को समर्थन देने में प्राय: हिचकिचाती थी। इसी कारण ग़रीब किसानों और कांग्रेस के बीच संबंध अनिश्चित बने रहे।

बॉक्स 1

'क्रांति की इस पूजा-वेदी पर हम अपना यौवन नैवेद्य के रूप में लाए हैं'

बहुत सारे राष्ट्रवादियों को लगता था कि अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ संघर्ष अहिंसा के ज़रिए पूरा नहीं हो सकता। 1928 में दिल्ली स्थित फ़िरोज़शाह कोटला मैदान में हुई बैठक में हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी (एच.एस.आर.ए.) की स्थापना की गई। इसके नेताओं में भगत सिंह, जतिन दास और अजॉय घोष शामिल थे। देश के विभिन्न भागों में कार्रवाइयाँ करते हुए एच.एस.आर.ए. ने ब्रिटिश सत्ता के कई प्रतीकों को निशाना बनाया। 1929 में भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने लेजिस्लेटिव असेंबली में बम फेंका। उसी साल उस ट्रेन को उड़ाने का प्रयास किया गया जिसमें लॉर्ड इरविन यात्रा कर रहे थे। जिस समय भगत सिंह पर मुक़दमा चला और उन्हें फाँसी दी गई उस समय उनकी उम्र केवल 23 साल थी। अपने मुक़दमे के दौरान भगत सिंह ने कहा था कि वे 'बम और पिस्तौल की उपासना नहीं करते' बल्कि समाज में क्रांति चाहते हैं –

'क्रांति मानवजाति का जन्मजात अधिकार है जिसका अपहरण नहीं किया जा सकता। स्वतंत्रता प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। श्रमिक वर्ग ही समाज का वास्तविक पोषक है, जनता की सर्वोपरि सत्ता की स्थापना श्रमिक वर्ग का अंतिम लक्ष्य है। इन आदर्शों के लिए और इस विश्वास के लिए हमें जो भी दंड दिया जाएगा, हम उसका सहर्ष स्वागत करेंगे। क्रांति की इस पूजा-वेदी पर हम अपना यौवन नैवेद्य के रूप में लाए हैं, क्योंकि ऐसे महान आदर्श के लिए बड़े-से-बड़ा त्याग भी कम है। हम संतुष्ट हैं और क्रांति के आगमन की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं।

'इंकलाब ज़िंदाबाद!'

भगतसिंह, बटुकेश्वरदत्त, 'बमकांड पर सेशन कोर्ट में बयान' (6 जून 1929 दिल्ली), *भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेज़*, जगमोहन सिंह, चमनलाल (सं) से उद्धृत, राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली, 2005

व्यवसायी वर्ग की क्या स्थिति थी? उन्होंने सविनय अवज्ञा आंदोलन के बारे में क्या रुख अपनाया? पहले विश्वयुद्ध के दौरान भारतीय व्यापारियों और उद्योगपतियों ने भारी मुनाफ़ा कमाया था और वे ताक़तवर हो चुके थे (देखें अध्याय 5)। अपने कारोबार को फैलाने के लिए उन्होंने ऐसी औपनिवेशिक नीतियों का विरोध किया जिनके कारण उनकी व्यावसायिक गतिविधियों में रुकावट आती थी। वे विदेशी वस्तुओं के आयात से सुरक्षा चाहते थे और रुपया–स्टर्लिंग विदेशी विनिमय अनुपात में बदलाव चाहते थे जिससे आयात में कमी आ जाए। व्यावसायिक हितों को संगठित करने के लिए उन्होंने 1920 में भारतीय औद्योगिक एवं व्यावसायिक कांग्रेस (इंडियन इंडस्ट्रियल एंड कमर्शियल कांग्रेस) और 1927 में भारतीय वाणिज्य एवं उद्योग परिसंघ (फेडरेशन ऑफ़ इंडियन चैंबर ऑफ़ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री–फिक्की) का गठन किया। पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास और जी.डी. बिड़ला जैसे जाने-माने उद्योगपतियों के नेतृत्व में उद्योगपतियों ने भारतीय अर्थव्यवस्था पर औपनिवेशिक नियंत्रण का विरोध किया और पहले सिविल नाफ़रमानी आंदोलन का समर्थन किया। उन्होंने आंदोलन को आर्थिक सहायता दी और आयातित वस्तुओं को खरीदने या बेचने से इनकार कर दिया। ज़्यादातर व्यवसायी स्वराज को एक ऐसे युग के रूप में देखते थे जहाँ कारोबार पर औपनिवेशिक पाबंदियाँ नहीं होंगी और व्यापार व उद्योग निर्बाध ढंग से फल-फूल सकेंगे। गोलमेज़ सम्मेलन की विफलता के बाद व्यावसायिक संगठनों का उत्साह भी मंद पड़ गया था। उन्हें उग्र गतिविधियों का भय था। वे लंबी अशांति की आशंका और कांग्रेस के युवा सदस्यों में समाजवाद के बढ़ते प्रभाव से डरे हुए थे।

औद्योगिक श्रमिक वर्ग ने सविनय अवज्ञा आंदोलन में नागपुर के अलावा और कहीं भी बहुत बड़ी संख्या में हिस्सा नहीं लिया। जैसे-जैसे उद्योगपति कांग्रेस के नज़दीक आ रहे थे, मज़दूर कांग्रेस से छिटकने लगे थे। फिर भी, कुछ मज़दूरों ने सविनय अवज्ञा आंदोलन में हिस्सा लिया। उन्होंने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार जैसे कुछ गांधीवादी विचारों को कम वेतन व खराब कार्यस्थितियों के ख़िलाफ़ अपनी लड़ाई से जोड़ लिया था। 1930 में रेलवे कामगारों की और 1932 में गोदी कामगारों की हड़ताल हुई। 1930 में छोटा नागपुर की टिन खानों के हज़ारों मज़दूरों ने गांधी टोपी पहनकर रैलियों और बहिष्कार अभियानों में हिस्सा लिया। फिर भी, कांग्रेस अपने कार्यक्रम में मज़दूरों की माँगों को समाहित करने में हिचकिचा रही थी। कांग्रेस को लगता था कि इससे उद्योगपति आंदोलन से दूर चले जाएँगे और साम्राज्यवाद विरोधी ताक़तों में फूट पड़ेगी।

सिविल नाफ़रमानी आंदोलन में औरतों ने बड़े पैमाने पर हिस्सा लिया। गांधीजी के नमक सत्याग्रह के दौरान हज़ारों औरतें उनकी बात सुनने के लिए घर से बाहर आ जाती थीं। उन्होंने जुलूसों में हिस्सा लिया, नमक बनाया,

कुछ महत्त्वपूर्ण तिथियाँ

1918–19

बाबा रामचंद्र उत्तर प्रदेश के किसानों को संगठित करते हैं।

अप्रैल 1919

रॉलट एक्ट के ख़िलाफ़ गांधीवादी हड़ताल; जलियाँवाला बाग़ हत्याकांड।

जनवरी 1921

असहयोग और ख़िलाफ़त आंदोलन शुरू।

फरवरी 1922

चौरी चौरा; गांधीजी असहयोग आंदोलन वापस ले लेते हैं।

मई 1924

अल्लूरी सीताराम राजू की गिरफ़्तारी; दो वर्ष से चला आ रहा हथियारबंद आदिवासी संघर्ष समाप्त।

दिसंबर 1929

लाहौर अधिवेशन; कांग्रेस 'पूर्ण स्वराज' की माँग को स्वीकार कर लेती है।

1930

अंबेडकर दमित वर्ग एसोसिएशन की स्थापना करते हैं।

मार्च 1930

गांधीजी दांडी में नमक क़ानून का उल्लंघन करके सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू करते हैं।

मार्च 1931

गांधीजी सविनय अवज्ञा आंदोलन वापस ले लेते हैं।

दिसंबर 1931

दूसरा गोलमेज़ सम्मेलन।

1932

सविनय अवज्ञा आंदोलन पुनः प्रारंभ।

चित्र 9 – राष्ट्रवादी जुलूसों में औरतें भी शामिल थीं।
राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान बहुत सारी औरतें अपनी ज़िंदगी में पहली बार अपने घर से निकलकर सार्वजनिक क्षेत्र में आई थीं। इस चित्र में आप बच्चों को गोद में लिए बहुत सारी ज़्यादा उम्र वाली औरतों और माँओं को भी जुलूस में देख सकते हैं।

विदेशी कपड़ों व शराब की दुकानों की पिकेटिंग की। बहुत सारी महिलाएँ जेल भी गईं। शहरी इलाक़ों में ज़्यादातर ऊँची जातियों की महिलाएँ सक्रिय थीं जबकि ग्रामीण इलाक़ों में संपन्न किसान परिवारों की महिलाएँ आंदोलन में हिस्सा ले रही थीं। गांधीजी के आह्वान के बाद औरतों को राष्ट्र की सेवा करना अपना पवित्र दायित्व दिखाई देने लगा था। लेकिन सार्वजनिक भूमिका में इस इज़ाफ़े का मतलब यह नहीं था कि औरतों की स्थिति में कोई भारी बदलाव आने वाला था। गांधीजी का मानना था कि घर चलाना, चूल्हा-चौका सँभालना, अच्छी माँ व अच्छी पत्नी की भूमिकाओं का निर्वाह करना ही औरत का असली कर्त्तव्य है। इसीलिए लंबे समय तक कांग्रेस संगठन में किसी भी महत्त्वपूर्ण पद पर औरतों को जगह देने से हिचकिचाती रही। कांग्रेस को उनकी प्रतीकात्मक उपस्थिति में ही दिलचस्पी थी।

चर्चा करें

सविनय अवज्ञा आंदोलन में विभिन्न वर्गों और समूहों ने क्यों हिस्सा लिया?

3.3 सविनय अवज्ञा की सीमाएँ

सभी सामाजिक समूह स्वराज की अमूर्त अवधारणा से प्रभावित नहीं थे। ऐसा ही एक समूह राष्ट्र के 'अछूतों' का था। वे 1930 के बाद खुद को दलित या उत्पीड़ित कहने लगे थे। कांग्रेस ने लंबे समय तक दलितों पर ध्यान नहीं दिया क्योंकि कांग्रेस रूढ़िवादी सवर्ण हिंदू सनातनपंथियों से डरी हुई थी। लेकिन महात्मा गांधी ने ऐलान किया कि अस्पृश्यता (छुआछूत) को खत्म किए बिना सौ साल तक भी स्वराज की स्थापना नहीं की जा सकती। उन्होंने

'अछूतों' को हरिजन यानी ईश्वर की संतान बताया। उन्हें मंदिरों, सार्वजनिक तालाबों, सड़कों और कुओं पर समान अधिकार दिलाने के लिए सत्याग्रह किया। मैला ढोनेवालों के काम को प्रतिष्ठा दिलाने के लिए वे खुद शौचालय साफ़ करने लगे। उन्होंने ऊँची जातियों का आह्वान किया कि वे अपना हृदय परिवर्तन करें और 'अस्पृश्यता के पाप' को छोड़ें। लेकिन बहुत सारे दलित नेता अपने समुदाय की समस्याओं का अलग राजनीतिक हल ढूँढ़ना चाहते थे। वे खुद को संगठित करने लगे। उन्होंने शिक्षा संस्थानों में आरक्षण के लिए आवाज़ उठाई और अलग निर्वाचन क्षेत्रों की बात कही ताकि वहाँ से विधायी परिषदों के लिए केवल दलितों को ही चुनकर भेजा जा सके। उनका मानना था कि उनकी सामाजिक अपंगता केवल राजनीतिक सशक्तीकरण से ही दूर हो सकती है। इसलिए सविनय अवज्ञा आंदोलन में दलितों की हिस्सेदारी काफ़ी समित थी। महाराष्ट्र और नागपुर क्षेत्र में यह बात खासतौर से दिखाई देती थी जहाँ उनके संगठन काफ़ी मज़बूत थे।

डॉ. अंबेडकर ने 1930 में दलितों को दमित वर्ग एसोसिएशन (Depressed Classes Association) में संगठित किया। दलितों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्रों के सवाल पर दूसरे गोलमेज़ सम्मेलन में महात्मा गांधी के साथ उनका काफ़ी विवाद हुआ। जब ब्रिटिश सरकार ने अंबेडकर की माँग मान ली तो गांधीजी आमरण अनशन पर बैठ गए। उनका मत था कि दलितों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था से समाज में उनके एकीकरण की प्रक्रिया धीमी पड़ जाएगी। आखिरकार अंबेडकर ने गांधीजी की राय मान ली और सितंबर 1932 में पूना पैक्ट पर हस्ताक्षर कर दिए। इससे दमित वर्गों (जिन्हें बाद में अनुसूचित जाति के नाम से जाना गया) को प्रांतीय एवं केंद्रीय विधायी परिषदों में आरक्षित सीटें मिल गईं हालाँकि उनके लिए मतदान सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों में ही होता था। फिर भी, दलित आंदोलन कांग्रेस के नेतृत्व में चल रहे राष्ट्रीय आंदोलन को शंका की दृष्टि से ही देखता रहा।

भारत के कुछ मुस्लिम राजनीतिक संगठनों ने भी सविनय अवज्ञा आंदोलन के प्रति कोई खास उत्साह नहीं दिखाया। असहयोग-ख़िलाफ़त आंदोलन के शांत पड़ जाने के बाद मुसलमानों का एक बहुत बड़ा तबक़ा कांग्रेस से कटा हुआ महसूस करने लगा था। 1920 के दशक के मध्य से कांग्रेस हिंदू महासभा जैसे हिंदू धार्मिक राष्ट्रवादी संगठनों के काफ़ी करीब दिखने लगी थी। जैसे-जैसे हिंदू-मुसलमानों के बीच संबंध खराब होते गए, दोनों समुदाय उग्र धार्मिक जुलूस निकालने लगे। इससे कई शहरों में हिंदू-मुस्लिम सांप्रदायिक टकराव व दंगे हुए। हर दंगे के साथ दोनों समुदायों के बीच फ़ासला बढ़ता गया।

कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने एक बार फिर गठबंधन का प्रयास किया। 1927 में ऐसा लगा भी कि अब एकता स्थापित हो ही जाएगी। सबसे महत्त्वपूर्ण मतभेद भावी विधान सभाओं में प्रतिनिधित्व के सवाल पर थे। मुस्लिम लीग
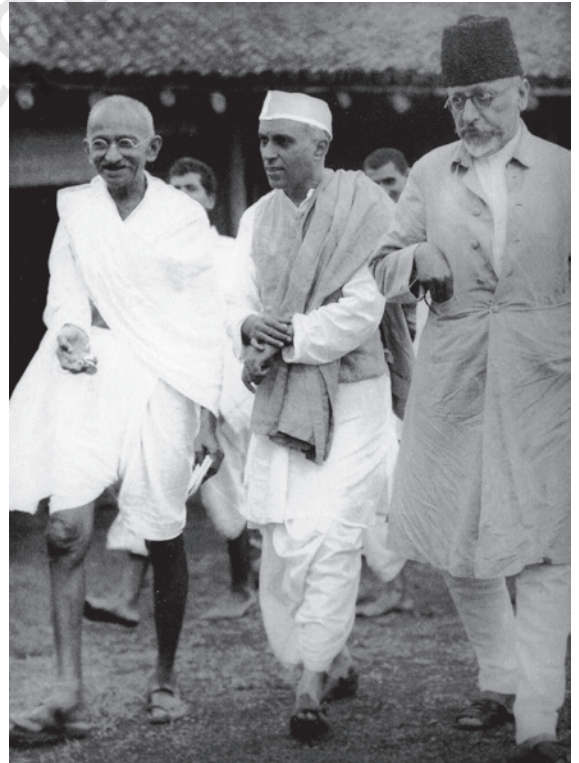
चित्र 10 – महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू और मौलाना आज़ाद, सेवाग्राम आश्रम, वर्धा, 1935

के नेताओं में से एक, मोहम्मद अली जिन्ना का कहना था कि अगर मुसलमानों को केंद्रीय सभा में आरक्षित सीटें दी जाएँ और मुस्लिम बहुल प्रांतों (बंगाल और पंजाब) में मुसलमानों को आबादी के अनुपात में प्रतिनिधित्व दिया जाए तो वे मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचिका की माँग छोड़ने के लिए तैयार हैं। प्रतिनिधित्व के सवाल पर यह बहस-मुबाहिसा चल ही रहा था कि 1928 में आयोजित किए गए सर्वदलीय सम्मेलन में हिंदू महासभा के एम.आर. जयकर ने इस समझौते के लिए किए जा रहे प्रयासों की खुलेआम निंदा शुरू कर दी जिससे इस मुद्दे के समाधान की सारी संभावनाएँ समाप्त हो गईं।

जब सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू हुआ उस समय समुदायों के बीच संदेह और अविश्वास का माहौल बना हुआ था। कांग्रेस से कटे हुए मुसलमानों का बड़ा तबक़ा किसी संयुक्त संघर्ष के लिए तैयार नहीं था। बहुत सारे मुस्लिम नेता और बुद्धिजीवी भारत में अल्पसंख्यकों के रूप में मुसलमानों की हैसियत को लेकर चिंता जता रहे थे। उनको भय था कि हिंदू बहुसंख्या के वर्चस्व की स्थिति में अल्पसंख्यकों की संस्कृति और पहचान खो जाएगी।

स्रोत-घ

1930 में मुस्लिम लीग के अध्यक्ष सर मोहम्मद इक़बाल ने मुसलमानों के लिए अल्पसंख्यक राजनीतिक हितों की रक्षा के उद्देश्य से पृथक निर्वाचिका की ज़रूरत पर एक बार फिर ज़ोर दिया। माना जाता है कि बाद के सालों में पाकिस्तान की माँग के लिए जो आवाज़ उठी उसका बौद्धिक औचित्य उनके इसी बयान से उपजा था। उन्होंने जो कहा वह इस प्रकार था–

'मुझे यह कहने में ज़रा सी भी हिचकिचाहट नहीं है कि अगर स्थायी सांप्रदायिक बंदोबस्त के तौर पर भारतीय मुसलमान को उसके अपने भारतीय होमलैंड में अपनी संस्कृति और परंपरा के अनुसार पूर्ण एवं स्वतंत्र विकास का अधिकार दिया जाए तो वह भारत की स्वतंत्रता के लिए अपना सबकुछ न्यौछावर करने को तैयार हो जाएगा। प्रत्येक समूह को अपने तरीक़े से स्वतंत्र विकास का अधिकार है। यह सिद्धांत किसी संकुचित सांप्रदायिकता की भावना से नहीं उपजा है।... जो समुदाय अन्य समुदायों के प्रति दुर्भावना रखता है वह नीच और अधम है। मैं अन्य समुदायों के रीति-रिवाजों, धर्मों और सामाजिक संस्थानों का अगाध सम्मान करता हूँ। कुरान की हिदायतों के अनुसार यह मेरा दायित्व है कि अगर ज़रूरत हो तो मैं उनके उपासना स्थलों की भी रक्षा करूँगा। लेकिन मैं उस सांप्रदायिक समूह को प्रेम करता हूँ जो मेरे लिए जीवन और आचरण का स्रोत है, जिसने मुझे अपना धर्म, अपना साहित्य, अपने विचार, अपनी संस्कृति देकर मुझे ऐसा बनाया है और इस प्रकार मेरी मौजूदा चेतना में अपने पूरे अतीत को एक सजीव कार्यात्मक तत्व के रूप में समो दिया है...।

'ऐसे में अपने उच्चतर आयाम में सांप्रदायिकता भारत जैसे देश के भीतर एक लयात्मक समुच्चय के निर्माण के लिए अपरिहार्य है। यूरोपीय देशों की तरह भारतीय समाज की इकाइयाँ भूभागों में बँटी हुई नहीं हैं। भारत के सामुदायिक समूहों को मान्यता दिए बिना यहाँ यूरोपीय लोकतंत्र के सिद्धांत को लागू नहीं किया जा सकता। भारत के भीतर एक मुस्लिम भारत की स्थापना के लिए मुसलमानों की ओर से उठ रही माँग बिलकुल सही है...।

'हिंदू सोचता है कि पृथक निर्वाचिका का प्रस्ताव सच्चे राष्ट्रवाद की भावना के विपरीत है क्योंकि वह मानता है कि "राष्ट्र" शब्द का मतलब एक ऐसे सार्वभौमिक सम्मिश्रण से है जिसमें किसी भी सामुदायिक इकाई को अपनी निजी विशिष्टता बनाए रखने का अधिकार नहीं हो सकता। लेकिन हालात ऐसे नहीं हैं। भारत नस्ली और धार्मिक विशिष्टताओं वाला देश है। इसी में आप यह तथ्य भी जोड़ दीजिए कि मुसलमान आर्थिक रूप से सामान्यत: कमज़ोर हैं, उन पर भारी क़र्ज़े हैं, खासतौर से पंजाब में, और कई प्रांतों में उनकी संख्या कम है। इसके बाद आप देखेंगे कि पृथक निर्वाचिका को बनाए रखने की हमारी बेचैनी का अर्थ क्या है।'

स्रोत

चर्चा करें

स्रोत-घ को ध्यान से पढ़ें। क्या आप सांप्रदायिकता के बारे में इक़बाल के विचारों से सहमत हैं? क्या आप सांप्रदायिकता को अलग प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं?

4 सामूहिक अपनेपन का भाव

चित्र 11 – बालगंगाधर तिलक, बीसवीं सदी के शुरू की तसवीर।
ध्यान से देखें कि तिलक एकता के प्रतीकों से घिरे हुए हैं। चित्र के चारों ओर विभिन्न धर्मों के पवित्र स्थान (मंदिर, चर्च, मस्जिद) चित्रित किए गए हैं।

राष्ट्रवाद की भावना तब पनपती है जब लोग ये महसूस करने लगते हैं कि वे एक ही राष्ट्र के अंग हैं; जब वे एक-दूसरे को एकता के सूत्र में बाँधने वाली कोई साझा बात ढूँढ़ लेते हैं। लेकिन राष्ट्र लोगों के मस्तिष्क में एक यथार्थ का रूप कैसे लेता है? विभिन्न समुदायों, क्षेत्रों या भाषाओं से संबद्ध अलग-अलग समूहों ने सामूहिक अपनेपन का भाव कैसे विकसित किया?

सामूहिक अपनेपन की यह भावना आंशिक रूप से संयुक्त संघर्षों के चलते पैदा हुई थी। इनके अलावा बहुत सारी सांस्कृतिक प्रक्रियाएँ भी थीं जिनके ज़रिए राष्ट्रवाद लोगों की कल्पना और दिलोदिमाग़ पर छा गया था। इतिहास व साहित्य, लोक कथाएँ व गीत, चित्र व प्रतीक, सभी ने राष्ट्रवाद को साकार करने में अपना योगदान दिया था।

जैसा कि आप जानते है, राष्ट्र की पहचान सबसे ज़्यादा किसी तसवीर में अंकित की जाती है (देखें अध्याय 1)। इससे लोगों को एक ऐसी छवि गढ़ने में मदद मिलती है जिसके ज़रिए वे राष्ट्र को पहचान सकते हैं। बीसवीं सदी में राष्ट्रवाद के विकास के साथ भारत की पहचान भी भारत माता की छवि का रूप लेने लगी। इस छवि के निर्माण का आरंभ बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय ने किया था। 1870 के दशक में उन्होंने मातृभूमि की स्तुति के रूप में 'वन्दे मातरम्' गीत लिखा था। बाद में इसे उन्होंने अपने उपन्यास *आनन्दमठ* में शामिल कर लिया। यह गीत बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन में खूब गाया गया। स्वदेशी आंदोलन की प्रेरणा से अबनीन्द्रनाथ टैगोर ने भारत माता की विख्यात छवि को चित्रित किया (देखें चित्र 12)। इस पेंटिग में भारत माता को एक संन्यासिनी के रूप में दर्शाया गया है। वह शांत, गंभीर, दैवी और अध्यात्मिक गुणों से युक्त दिखाई देती है। आगे चल कर जब इस छवि को बड़े पैमाने पर तसवीरों में उतारा जाने लगा और विभिन्न कलाकार यह तसवीर बनाने लगे तो भारत माता की छवि विविध रूप ग्रहण करती गई (देखें चित्र 14)। इस मातृ छवि के प्रति श्रद्धा को राष्ट्रवाद में आस्था का प्रतीक माना जाने लगा।

राष्ट्रवाद का विचार भारतीय लोक कथाओं को पुनर्जीवित करने के आंदोलन से भी मज़बूत हुआ। उन्नीसवीं सदी के आखिर में राष्ट्रवादियों ने भाटों व चारणों द्वारा गाई-सुनाई जाने वाली लोक कथाओं को दर्ज करना शुरू कर दिया। वे लोक गीतों व जनश्रुतियों को इकट्ठा करने के लिए गाँव-गाँव घूमने लगे। उनका मानना था कि यही कहानियाँ हमारी उस परंपरागत संस्कृति की सही तसवीर पेश करती हैं जो बाहरी ताक़तों के प्रभाव से भ्रष्ट और दूषित हो चुकी है। अपनी राष्ट्रीय पहचान को ढूंढ़ने और अपने अतीत में गौरव का भाव पैदा करने के लिए इस लोक परंपरा को बचाकर रखना जरूरी था। बगांल में खुद रबीन्द्रनाथ टैगोर भी लोक-गाथा गीत, बाल गीत और मिथकों

चित्र 12 – भारत माता, अबनीन्द्रनाथ टैगोर, 1905
ध्यान से देखें कि यहाँ दर्शाई गई माँ की छवि शिक्षा, भोजन और कपड़े दे रही है। एक हाथ में माला उसके संन्यासी गुण को रेखांकित करती है। अपने पूर्ववर्ती रवि वर्मा की भांति अबनीन्द्रनाथ टैगोर ने भी ऐसी चित्र शैली विकसित करने का प्रयास किया जिसे सच्चे अर्थों में भारतीय माना जा सके।

चित्र 13 – जवाहरलाल नेहरू, एक लोकप्रिय चित्र।
इस चित्र में नेहरू भारत माता और भारत के नक़्शे को हृदय के पास रखे दिखाई दे रहे हैं। बहुत सारे चित्रों में राष्ट्रवादी नेताओं को अपना सिर भारत माता के चरणों में चढ़ाते हुए दर्शाया गया है। माँ के लिए बलिदान का विचार लोगों की कल्पना में बहुत महत्त्वपूर्ण था।

को इकट्ठा करने निकल पड़े। उन्होंने लोक परंपराओं को पुनर्जीवित करने वाले आंदोलन का नेतृत्व किया। मद्रास में नटेसा शास्त्री ने *द फ़ोकलोर्स ऑफ़ सदर्न इंडिया* के नाम से तमिल लोक कथाओं का विशाल संकलन चार खंडों में प्रकाशित किया। उनका मानना था कि लोक कथाएँ राष्ट्रीय साहित्य होती हैं; यह 'लोगों के असली विचारों और विशिष्टताओं की सबसे विश्वसनीय अभिव्यक्ति' है।

जैसे-जैसे राष्ट्रीय आंदोलन आगे बढ़ा, राष्ट्रवादी नेता लोगों को एकजुट करने और उनमें राष्ट्रवाद की भावना भरने के लिए इस तरह के चिह्नों और प्रतीकों के बारे में और ज़्यादा जागरूक होते गए। बंगाल में स्वदेशी आंदोलन के दौरान एक तिरंगा झंडा (हरा, पीला, लाल) तैयार किया गया। इसमें ब्रिटिश भारत के आठ प्रांतों का प्रतिनिधित्व करते कमल के आठ फूल और हिंदुओं व मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करता एक अर्धचंद्र दर्शाया गया था। 1921 तक गांधीजी ने भी स्वराज का झंडा तैयार कर लिया था। यह भी तिरंगा (सफ़ेद, हरा और लाल) था। इसके मध्य में गांधीवादी प्रतीक चरखे को जगह दी गई थी जो स्वावलंबन का प्रतीक था। जुलूसों में यह झंडा थामे चलना शासन के प्रति अवज्ञा का संकेत था।

इतिहास की पुनर्व्याख्या राष्ट्रवाद की भावना पैदा करने का एक और साधन थी। उन्नीसवीं सदी के अंत तक आते-आते बहुत सारे भारतीय यह महसूस करने लगे थे कि राष्ट्र के प्रति गर्व का भाव जगाने के लिए भारतीय इतिहास को अलग ढंग से पढ़ाया जाना चाहिए। अंग्रेजों की नज़र में भारतीय पिछड़े हुए और आदिम लोग थे जो अपना शासन खुद नहीं सँभाल सकते। इसके जवाब में भारत के लोग अपनी महान उपलब्धियों की खोज में अतीत की ओर देखने लगे। उन्होंने उस गौरवमयी प्राचीन युग के बारे में लिखना शुरू कर दिया जब कला और वास्तुशिल्प, विज्ञान और गणित, धर्म और संस्कृति, क़ानून और दर्शन, हस्तकला और व्यापार फल-फूल रहे थे। उनका कहना था की इस महान युग के बाद पतन का समय आया और भारत को ग़ुलाम बना लिया गया। इस राष्ट्रवादी इतिहास में पाठकों को अतीत में भारत की महानता व उपलब्धियों पर गर्व करने और ब्रिटिश शासन के तहत दुर्दशा से मुक्ति के लिए संघर्ष का मार्ग अपनाने का आह्वान किया जाता था।

लोगों को एकजुट करने की इन कोशिशों की अपनी समस्याएँ थीं। जिस अतीत का गौरवगान किया जा रहा था वह हिंदुओं का अतीत था। जिन

चित्र 14 – भारत माता।
भारत माता की यह छवि अबनीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा चित्रित छवि के बिलकुल विपरीत है। यहाँ भारत माता के हाथों में त्रिशूल है और वह हाथी व शेर के बीच खड़ी हैं। ये दोनों ही शक्ति और सत्ता के प्रतीक हैं।

गतिविधि

चित्र 12 और 14 को देखिए। क्या आपको लगता है कि यह तसवीरें सभी जातियों और समुदायों को भाएँगी? अपनी राय को संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।

स्रोत-ङ

'पुराने ज़माने में भारत आने वाले विदेशी यात्री आर्य वंश के लोगों के साहस, सच्चाई और विनम्रता पर चकित रह जाते थे; अब वे बस इन गुणों के अभाव की बात करते हैं। उस जमाने में हिंदू विजय के लिए निकलते थे और तातार, चीन व अन्य देशों में अपनी विजय-पताका फहराते थे। अब एक क्षुद्र से द्वीप के चन्द सिपाही भारत भूमि पर क़ब्ज़ा किए हुए हैं।'

तारिणीचरण चट्टोपाध्याय, *भारतबर्षेर इतिहास (भारतवर्ष का इतिहास)*, खंड 1, 1858

स्रोत

छवियों का सहारा लिया जा रहा था वे हिंदू प्रतीक थे। इसलिए अन्य समुदायों के लोग अलग-थलग महसूस करने लगे थे।

निष्कर्ष

अंग्रेज़ सरकार के ख़िलाफ़ बढ़ता गुस्सा विभिन्न भारतीय समूहों और वर्गों को स्वतंत्रता के साझा संघर्ष में खींच रहा था। महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने लोगों के असंतोष और परेशानियों को स्वतंत्रता के संगठित आंदोलन में समाहित करने का प्रयास किया। उन्होंने आंदोलन के ज़रिए पूरे देश को एकता के सूत्र में पिरोने का प्रयास किया। लेकिन जैसा कि हमने देखा, इन आंदोलनों में हिस्सा लेने वाले विभिन्न समूह और वर्ग अलग-अलग आकांक्षाओं और अपेक्षाओं के साथ हिस्सा ले रहे थे। उनकी शिकायतें बहुत व्यापक थीं इसलिए औपनिवेशिक शासन से मुक्ति का भी सबके लिए अपना-अपना अर्थ था। कांग्रेस ने इन विभेदों को हल करने और यह सुनिश्चित करने के लिए हमेशा प्रयास किया कि एक समूह की माँगों के कारण कोई दूसरा समूह दूर न चला जाए। यही वजह है कि आंदोलन के भीतर अकसर बिखराव आ जाता था। कांग्रेस की सरगर्मियों और राष्ट्रीय एकता के शिखर को छूने के बाद बिखराव और आंतरिक टकरावों के चरण आ जाते थे।

चित्र 14(अ) - भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान बम्बई में औरतों का एक जुलूस

संक्षेप में, जो राष्ट्र उभर रहा था वह औपनिवेशिक शासन से मुक्ति की चाह रखने वाली बहुत सारी आवाज़ों का पुंज था।

भारत छोड़ो आंदोलन

क्रिप्स मिशन की असफलता एवं द्वितीय विश्व युद्ध के प्रभावों ने भारत में व्यापक असंतोष को जन्म दिया। इसके फलस्वरूप गांधी जी ने एक आंदोलन शुरू किया, जिसमें उन्होंने अंग्रेजों के पूरी तरह से भारत छोड़ने पर ज़ोर दिया। वर्धा में 14 जुलाई 1942 को अपनी कार्यकारिणी में कांग्रेस कार्य समिति ने ऐतिहासिक 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित किया, जिसमें सत्ता का भारतीयों को तत्काल हस्तांतरण एवं भारत छोड़ने की मांग की गई। 8 अगस्त 1942 को बंबई में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया, जिसमें पूरे देश में व्यापक पैमाने पर एक अंहिसक जन संघर्ष का आह्वान किया गया। इसी अवसर पर गांधी जी ने प्रसिद्ध 'करो या मरो' भाषण दिया था। 'भारत छोड़ो' के इस आह्वान ने देश के अधिकतर हिस्सों में राज्य व्यवस्था को ठप्प कर दिया, लोग स्वतः ही आन्दोलन में कूद पड़े। लोगों ने हड़तालें की और राष्ट्रीय गीतों एवं नारों के साथ प्रदर्शन किए एवं जुलूस निकाले। यह आंदोलन वास्तव में एक जन आन्दोलन था जिसमें छात्र, मजदूर और किसान जैसे हजारों साधारण लोगों ने हिस्सा लिया। इसमें नेताओं की सक्रिय भागीदारी भी देखी गई जिनमें जयप्रकाश नारायण, अरूणा आसफ अली एवं राम मनोहर लोहिया और बहुत सारी महिलाएं जैसे बंगाल से मातांगिनी हाजरा, असम से कनकलता बरूआ और उड़ीसा से रमा देवी थी। अंग्रेजों द्वारा अत्यधिक बल प्रयोग के बावजूद इसे दबाने में एक वर्ष से अधिक समय लग गया।

संक्षेप में लिखें

1. व्याख्या करें –
   (क) उपनिवेशों में राष्ट्रवाद के उदय की प्रक्रिया उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन से जुड़ी हुई क्यों थी।
   (ख) पहले विश्व युद्ध ने भारत में राष्ट्रीय आंदोलन के विकास में किस प्रकार योगदान दिया।
   (ग) भारत के लोग रॉलट एक्ट के विरोध में क्यों थे।
   (घ) गांधीजी ने असहयोग आंदोलन को वापस लेने का फ़ैसला क्यों लिया।
2. सत्याग्रह के विचार का क्या मतलब है?
3. निम्नलिखित पर अख़बार के लिए रिपोर्ट लिखें –
   (क) जलियाँवाला बाग़ हत्याकांड
   (ख) साइमन कमीशन
4. इस अध्याय में दी गई भारत माता की छवि और अध्याय 1 में दी गई जर्मेनिया की छवि की तुलना कीजिए।

संक्षेप में लिखें

चर्चा करें

1. 1921 में असहयोग आंदोलन में शामिल होने वाले सभी सामाजिक समूहों की सूची बनाइए। इसके बाद उनमें से किन्हीं तीन को चुन कर उनकी आशाओं और संघर्षों के बारे में लिखते हुए यह दर्शाइए कि वे आंदोलन में शामिल क्यों हुए।
2. नमक यात्रा की चर्चा करते हुए स्पष्ट करें कि यह उपनिवेशवाद के ख़िलाफ़ प्रतिरोध का एक असरदार प्रतीक था।
3. कल्पना कीजिए की आप सिविल नाफ़रमानी आंदोलन में हिस्सा लेने वाली महिला हैं। बताइए कि इस अनुभव का आपके जीवन में क्या अर्थ होता।
4. राजनीतिक नेता पृथक निर्वाचिका के सवाल पर क्यों बँटे हुए थे।

चर्चा करें

परियोजना कार्य

इंडो-चाइना के उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन का अध्ययन करें। भारत के राष्ट्रीय आंदोलन की तुलना इंडो-चाइना के स्वतंत्रता संघर्ष से करें।

परियोजना कार्य